समयसार सात गाथा हुई। कुछ श्रोता नये हैं, सातमी का भावार्थ फिर से लेते हैं। सूक्ष्म अधिकार है, भावार्थ है न ?

`इस शुद्धआत्मा के कर्म बंध के निमित्त से अशुद्धता होती है, यह बात तो दूर ही रहो'... क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा शुद्धज्ञान घन पवित्रता का पिण्ड है उसमें, उसकी दशा में पर्याय में वर्तमान हालत में कर्म के निमित्त की अपेक्षा से पुण्य और पाप एवं भ्रांति आदि अशुद्धता हो, वह लक्ष्य में लेने लायक नहीं। आत्मा वस्तु है यह तो पवित्र और शुद्ध चैतन्यघन है। परंतु उसकी दशा में हालत में,

पर्याय में, वर्तमान-वर्तमान अंश में अशुद्धता है पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति, काम और क्रोध, यह सभी अशुद्धता है, यह अशुद्धता तो यहाँ दूर रहो कहते हैं उसका तो लक्ष्य करना नहीं। आहाहा !

जिसे आत्मा का सम्यग्दर्शन करना हो, आत्मा जैसा है परिपूर्ण शुद्ध - ऐसा जिसको अंतर में सम्यक् सत्यदर्शन जैसा सत्य है उसका दर्शन करना हो अथवा उसका अनुभव करना हो, उसको क्या करना ? यह बात चलती है, कि अशुद्धता को लक्ष्य में लेना ही नहीं, अंदर अशुद्धता होती है यह लक्ष्य में नहीं लेना। आहाहा ! क्योंकि अशुद्धता के लक्ष्य से तो मलिनता का राग ही उत्पन्न होगा। उससे सम्यग्दर्शन और धर्म दशा उत्पन्न नहीं होगी। डॉक्टर ? थोड़ा सूक्ष्म विषय है, फिर से लिया है तीसरी बार लिया है हैं। `**किन्तु उसके दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भी भेद नहीं**' क्या कहते हैं ? वस्तु जो है वस्तु जो अंतर अनंत अनंत गुणों का एकरूप तत्त्व है, उसमें श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र ऐसी जो निर्मल पर्याय प्रगट होती है उसका भी लक्ष्य करने से सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा ! आत्मा का साक्षात्कार अशुद्धता के लक्ष्य से नहीं होता और (जो) उसमें गुण है अथवा पर्याय है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र... शक्ति तो त्रिकाली वस्तु में है, परंतु उसको दर्शन-ज्ञान-चारित्र भेद से समझाना, यह भेद है, उसके लक्ष्य से भी आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता। आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहाहा !

`**क्योंकि वस्तु अनंत धर्मरूप एक धर्मी है,**' वस्तु जो है वस्तु यह अनंत-ज्ञान-दर्शन-आनंद जैसे अनंतगुण अर्थात धर्म, धर्म अर्थात उसने धारण की हुयी वस्तु, ऐसे अनंतगुण हैं, परंतु धर्मी अनंतगुणों का एकरूप है, आहाहाहा ! है ? अनंतधर्मरूपी एकधर्मी अर्थात एक वस्तु, द्रव्य अर्थात तत्त्व एक है, अनंतगुण अंदर होनेपर भी अनंत गुणों का एकरूप द्रव्य है। `**परंतु व्यवहारीजन धर्मों को ही समझते है**' अनादि का अज्ञानी प्राणी, उसको अन्दर धर्मी त्रिकाली चीज क्या है ? उसका ख्याल नहीं, ज्ञान नहीं। तब उसमें जो ज्ञान-दर्शन आदि जो गुण हैं, उन गुणों द्वारा समझाने में आता है। उदानी ! अलग जाति की बात है। बड़ा डॉक्टर है वहाँ मुंबई में, डॉक्टर हाँ दांत का, डॉक्टर ! यह अलग जाति की चीज है। आहाहा !

कहते हैं वस्तु तो वस्तु, अखण्ड अभेद चीज आत्मा अंदर विद्यमान है उसमें अनंत गुण है। शक्ति है यह धर्म अर्थात धारण किये हुए गुण परंतु उनके अनंत गुणरूप तो द्रव्य एक है धर्मी, द्रव्य। परंतु अज्ञानी जन द्रव्य को तो जानते नहीं, वह ज्ञान-दर्शन-चारित्र यह आत्मा है - ऐसा भेद करके दिखायें तो जान सकते हैं। तब इसकारण से ज्ञान-दर्शन-चारित्र उसका जानना उसका विश्वास, उसमें रमणता

यह आत्मा - ऐसा कहने से अज्ञानी उसको गुण द्वारा गुणी जानते है तब गुण द्वारा समझाने में आता है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात है। (जो) धर्मी को नहीं जानते। द्रव्य को तो अज्ञानी अनादि से जानते ही नहीं कि अंदर क्या चीज है ?

`**इसलिये वस्तु के किन्हीं असाधारण धर्मो को उपदेश में लेकर**' उसके असाधारण जो उसमें गुण है जो दूसरे में नहीं - ऐसे ज्ञानानंद आदि गुणों से उसको उपदेश द्वारा समझाने में आता है, कि जो देख भैया। यह अंदर ज्ञान है न, वह विश्वास करता है यह आत्मा, ज्ञान करता है वह आत्मा, स्वरूप में रमण करता यह आत्मा ! - ऐसा गुणों का भेद करके गुणी अर्थात धर्मी द्रव्य को दिखलानेवाला उपदेशक, धर्म से धर्म द्वारा धर्मी को समझाते हैं। धर्मी को अर्थात द्रव्य को, समझनेवाले (शिष्य) को, समझनेवाले को धर्मी नाम द्रव्य उसका धर्म अर्थात गुण, गुणों के भेद द्वारा धर्मी अर्थात द्रव्य को समझनेवाले को समझाते हैं। आहाहा ! ऐसी बात है। उपदेश द्वारा कहकर, अभेदरूप वस्तु भगवान प्रभु तो अभेद वस्तु अनंतगुण का एकरूप है। आहाहा !

`**उसमें धर्मों के नामरूप भेद को उत्पन्न करके,**' क्या कहते हैं ? गुण और गुणी वस्तु तो अभेद है जैसे शक्कर की मिठास और शक्कर तो एकरूप है परंतु जो शक्कर को न जाने उसको मिठास सो शक्कर - ऐसा गुण का भेद करके शक्कर जो द्रव्य है, धर्मी अर्थात द्रव्य उसे बताते हैं, इसप्रकार आत्मा अनंत गुण का पिण्ड है अंदर... परन्तु धर्मी द्रव्य है, उसको अनादि से अज्ञानी जानते नहीं तब गुण का भेद करके बताते हैं, कि देखो ! ज्ञान सो आत्मा, इतना भेद किया। आहाहा ! समझ में आया ? वस्तु के किन्हीं असाधारण धर्मों को उपदेश में लेकर अभेदरूप वस्तु में भी धर्मों के नामरूप भेद, कथनरूप भेद वस्तु में भेद नहीं। आहाहाहा !

देखो यह पिलास्टिक है। अब उसको सफेद कहना चिकना कहना है, वह कहीं अंदर में भिन्न नहीं, यह तो एकरूप है। परंतु उसको चिकना है, सफेद है - ऐसे नामों से उसके गुणों का कथन कहकर पिलास्टिक बताना है। इसीप्रकार भगवान आत्मा अंदर ज्ञान-दर्शन-चारित्र से तो अभिन्न एकाकार है, परंतु जो धर्मी जीव को नहीं जाननेवाले, धर्मी अर्थात वस्तु को नहीं जाननेवाले ऐसे अज्ञानी को धर्मी बताने को उसके गुणद्वारा धर्म द्वारा धर्मी को बताया जाता है। आहाहा ! श्वास गहरी ठहर जाये - ऐसा है यह तो। सभी अभ्यास किया परंतु यह कभी किया नहीं। जन्म-मरण (से) रहित कैसे होते हैं ? कि ज्ञानी को, ज्ञानी अर्थात आत्मा, आत्मा को दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है, `इस प्रकार अभेद में भेद किया जाता है', वस्तु तो अभेद

है। जैसे यह चीज (पिलास्टिक) तो अभेद है, परंतु चिकनाई और सफेदाई आदि (से) बताना, अब नाम कथन करके उस चीज को समझाते हैं। इसीप्रकार भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेद (रूप) नहीं, अंदर अभेद वस्तु है, एकरूप है, परंतु एकरूप चीज को नहीं जाननेवाले को, गुण द्वारा, धर्म द्वारा, इस अभेद को दिखाते है। आहाहा ! क्योंकि अभेद देखने से सम्यग्दर्शन होता है और आत्मानुभव होता है एवं आत्मा का स्वाद आता है। आहाहाहाहा ! समझ में आया ?

`इसलिये यह व्यवहार है'** अभेद में भेद किया जाता है इसलिये व्यवहार है। **`यदि परमार्थ से विचार किया जाय तो एकद्रव्य वस्तु है, यह अनंतगुणों को पर्यायों को अभेदरूप से पीकर बैठा है' यह तो वस्तु अखण्ड है। शक्कर में मिठास सफेदाई तो अंदर अखण्ड विद्यमान है, भिन्न नहीं है कोई चीज। आहाहा ! इसीप्रकार शक्कर जैसा प्रभु आत्मा अनंतगुणों का एकरूप होकर पीकर बैठा है। आहाहा ! अब ऐसी बात ! एक द्रव्य अनंत पर्याय को अभेदरूप से पीकर बैठा है। `इसलिये उसमें भेद नहीं' यह तो साधारण बात की है।

`अब यहाँ कोई कह सकता है' क्या कहते हैं ? शिष्य को कहते हैं कि तुम ऐसी बात कह सकते हो, क्योंकि वस्तु जो हैं, उसमें गुण भिन्न नहीं (है) गुण से तो अभिन्न एकाकार वस्तु है, तब हम गुणों का भेद करके व्यवहार कहकर, व्यवहार कहकर यह उसमें नहीं है अभेद में भेद नहीं है - ऐसा हमने कहा, तब तुम प्रश्न कर सकते हो ! आहाहा ! मोटाणी ? इस पाऊडर वाऊडर में वहाँ नहीं मिले - ऐसा कहीं ? आहाहाहा !

यहाँ कोई कह सकता है कि आहाहाहा ! पूंछो कि वस्तु भगवान अंदर है तो देह से भिन्न, पुण्य-पाप के राग से भिन्न और गुण-गुणी का भेद भी जिसमें नहीं, ऐसी अभेदवस्तु को भेद करके व्यवहार कहा, और व्यवहार कहकर उसका लक्ष्य छुड़या और अखण्डानंद प्रभु अभेद है, उसमें दृष्टि लगाई, ऐसी बात हम (ने) कहीं यह तो परमार्थ है और गुण भेद करके बताया तो वह व्यवहार है, तब तुम्हारा प्रश्न होगा, उसमें हो सकता है। कि (जो) उसमें है उसको व्यवहार क्यों कहा ? उसमें न हो, उसको व्यवहार कहो यह बराबर है। समझ में आया ? आहाहाहाहा !

आत्मा की अपेक्षा से शरीर कर्म वाणी, देव-गुरु-शास्त्र यह अवस्तु है, यह (ज्ञायक) वस्तु है तो वह अवस्तु हैं। यह अंगुली है तब यह अंगुली अंगुलीरूप से वस्तु है परंतु दूसरी अंगुली की अपेक्षा से यह अंगुली अवस्तु है क्योंकि एक अंगुली में दूसरी अंगुली है नहीं, अतः अवस्तु है। इसीप्रकार आत्मा में शरीर, कर्म, देव, गुरु, शास्त्र यह परद्रव्य है वह परद्रव्य तो है, अपने द्रव्य की अपेक्षा से अवस्तु (है) अद्रव्य, यह

तो ठीक है, परंतु तुम तो गुण भेदों को व्यवहार कहते हो तब वह तो अवस्तु हो जाती है। सूक्ष्म बात है भाई ! कभी सुनी नहीं, कभी मिली नहीं, यह गड़बड़ गड़बड़ सभी धर्म के नाम पर। आहाहा ! क्या कहा ?

`यहाँ कोई कह सकता है' - ऐसा लिया है तुम - ऐसा प्रश्न कर सकते हो। समझ में आया ? क्योंकि हम (ने) तो गुण भेद को व्यवहार कहा तब उसका अर्थ हो गया कि वह अवस्तु हो गई ? ***जैसे अपनी चीज है आत्मा उस अपेक्षा से इस शरीर आदि को अवस्तु कहा जाता है, यह तो उसके कारण तो वस्तु है परंतु इसके कारण अवस्तु है। ऐसे भगवान आत्मा को हमने गुणभेद कहकर व्यवहार कहा, तब व्यवहार तो उसको कहते हैं कि (जो) उसमें न हो उसमें न हो।*** (डॉक्टर) गाथा महान आयी है बारह अंगों का सार दिया है। आहाहाहा ! सूक्ष्म लगे बापू क्या करें ?

प्रभु तेरा मार्ग, रास्ता कोई अलौकिक है। कभी मिला नहीं, अभी तो कहीं सुनने को भी मिलता नहीं। हमारे सेठ कहते हैं कि नहीं मिलता। क्यों नेमिचन्द्रभाई ! आहाहा ! (श्रोता :- शरीर में जितना दुःख आता है राग खिंचता है ?) नहीं नहीं नहीं झूठी बात, यह झूठ है। शरीर हो तो, (श्रोता :- राग रहेगा) राग नहीं रहेगा। वह राग करे तो रहेगा। राग से लक्ष्य छोड़कर अपने अभेद ऊपर दृष्टि करेगा तो राग नहीं होगा ? शरीर (से) नहीं होगा- ऐसा राग ही नहीं होगा। सूक्ष्म बात है । अपनी जो अभेद चीज है, उसको भेद करके बताना वह भेद तो व्यवहार हुआ, तब शिष्य कहता है कि तुम प्रश्न कर सकते हो, क्योंकि गुण (भेद) को हमने व्यवहार कहा तब व्यवहार तो अवस्तु को कहा जाता है, उसमें न हो उस वस्तु को व्यवहार कहा जाता है, और यह तो अंदर में है। आहाहाहा ! यह तो अलौकिक बात है बापू ! अभी तो करोड़ों में अबजों में मिलना मुश्किल है ऐसी बात है। हम तो सारी दुनिया (को) जानते हैं। आहाहा ! किस पद्धति और क्या रीति है बात यह कोई अलौकिक है। आहाहा ! कहते हैं कि यहाँ कोई यह कह सकता है, यहाँ कोई यह कह सकता है, क्यों ? कि पर्याय भी द्रव्य का ही भेद है, यह ज्ञान-दर्शन-आनंद यह जो दशा यह आत्मा की है और आत्मा में है और आप कहते हैं कि यह तो व्यवहार है ? तो तुम प्रश्न कर सकते हो कि (जो) अपने में है उसे व्यवहार क्यों कहो ? अपने में न हो उसको व्यवहार कहो। आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है बापू ! यह तो मंत्र है। अंतर के मंत्र है। आहाहा ! हीरालालजी नहीं आये, माणेकचन्दजी ! भावनगर, बाहर गये हैं। ठीक !

क्या कहा ? यहाँ कोई `कोई' सब नहीं, यह कह सकता है कि आत्मा की

जो पर्याय है दर्शन-ज्ञान-चारित्र वस्तु की दशा है, यह दशा है यह वस्तु में है तब तुम कह सकते हो कि वस्तु में है उसको व्यवहार क्यों कहा ? वस्तु में न हो उसको व्यवहार कहो तब यह तो बराबर है अपने में जो नहीं ऐसी पर चीज को तुम अवस्तु कहो और व्यवहार कहो तो यह व्याजबी है परंतु अपने में दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय तो है, अपने में है उसको तुम व्यवहार कहते हो अवस्तु कहते हो, अपने में है नहीं - ऐसा कहने में आता है - ऐसा तुम प्रश्न कर सकते हो। आहा ! समझ में आया ? अरे ! ऐसी बातें हैं।

अवस्तु नहीं, क्या कहा ? पर्याय भी द्रव्य का ही भेद है। - ऐसा प्रश्नकार का प्रश्न है, तुम - ऐसा प्रश्न कर सकते हो, कि भगवान आत्मा उसकी श्रद्धा, ज्ञान और आनंद यह दशा पर्याय अर्थात गुण भेद यह उसमें है, यह अवस्तु तो नहीं अर्थात यह परवस्तु तो नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! स्पष्टीकरण करनेवाले पण्डितजी ने बहुत सुन्दर स्पष्टीकरण किया है। है तो पण्डित, दो सौ वर्ष पहले (हुये) परंतु बहुत स्पष्टीकरण किया है, यह आप कह सकते हो, कि द्रव्य जो वस्तु है उसकी दशा जो है, अवस्था है यह तो उसकी है यह दशा कोई पर की नहीं और यह पर की हो तो अवस्तु कहा जाता है, परंतु अपनी पर्याय को अवस्तु क्यों कहा ? क्योंकि तुमने उसको व्यवहार कहा। अतः व्यवहार तो अवस्तु को कहते हैं। आहाहाहा ! यह तो अलौकिक बात है भगवान ! क्या कहें ? आहाहा ! **`तब फिर उन्हें व्यवहार कैसे कहा जा सकता है ?'** यह अवस्तु नहीं, आत्मा में राग नहीं। पुण्य नहीं तब यह तो है नहीं, दया, दान (के) जो विकल्प है यह तो आत्मा में है ही नहीं और यह आत्मा के है ही नहीं, यह तो विकार है दुःख है, ***परंतु आत्मा में आत्मा का ज्ञान करना, श्रद्धा करना, स्थिरता करना यह तो आत्मा की (अवस्था) है यह दशा तो आत्मा की है और आत्मा में है और आत्मा की (पर्याय) है, उसको तुम व्यवहार कहकर अवस्तु कहते हो, क्योंकि व्यवहार है वह अवस्तु है, अपने में न हो ऐसी चीज को अवस्तु कहा जाता है और उसको व्यवहार कहा जाता है, परंतु अपने में है यह अवस्तु नहीं,*** (फिर भी) उसको तुम व्यवहार कहते हो, तब (वह) अवस्तु हो जाती है, अरे ! ऐसी बात है। कहो चिमनभाई ? यह बात तो तीसरी बार आती है।

क्या कहा ? पहले तो प्रश्नकार का रूप क्या है ? प्रश्नकार की मर्यादा उसका रूप क्या है ? यह प्रश्न किस प्रकार से करते हैं ? यह समझना। बाद में उसका उत्तर हो तब समझ में आये। प्रश्नकार ने - ऐसा प्रश्न किया कि तुम - ऐसा प्रश्न कर सकते हो, पण्डितजी - ऐसा कहते है कि तुम - ऐसा प्रश्न कर सकते हो

कैसा ? कि आपने दर्शन, ज्ञान, चारित्र, आनंद आदि दशा तो है वह अपने में है उसको तुम व्यवहार कहो, तब तो यह अवस्तु हो गई, अपने में नहीं है - ऐसा हुआ। उदानी ? दांत का बड़ा है, बोम्बे में बड़ा डॉक्टर, बत्तीसी यहाँ (मुँह में) यह बत्तीसी बैठालते है। आहाहा !

भगवान आत्मा अंर्तमुख अंतरचीज एकरूप अभेद वस्तु अंतर गुणों का पिण्डरूप अभेद है तब वह तो दृष्टि कराने को, तुम भेद दृष्टि से कहते हो तो भेद तो व्यवहार है, भेद तो अवस्तु है, जैसे पर अवस्तु है तो आपने भेद को भी अवस्तु कहा, तब (क्या) अवस्तु से आत्मा जानने में आता है ? अवस्तु से वस्तु जानने में आती है और उसको अवस्तु कहकर उसमें आत्मा में पर्याय नहीं है - ऐसा आप कहते हो, तब क्या उसका मेल बैठता है ? (श्रोता :- इसमें कुछ समझ में नहीं आता) ध्यान रखे तो समझ में आये। फिर... यह तो तीसरी बार चलता है। यह तो कितने ही लोग नये आये है हमारे, यहाँ रमणीकभाई और तुम्हारे आये है न राजकोट से। सुने तो सही कि यह क्या है ? आहाहा !

कहते हैं कि सुनो कि आत्मा एक चीज है, अंदर तब वह चीज, शरीर, वाणी, कर्म पर से तो बिलकुल भिन्न है, और इस कारण उस चीज को व्यवहार कहा। क्योंकि पर चीज अवस्तु स्व की अपेक्षा से अवस्तु है, उसको तो व्यवहार कहा, यह तो तुम्हारी बात बराबर है, परंतु अपने में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनंद तो अपने में है, क्या उसको तुम व्यवहार कह कर, नहीं है और अवस्तु है - ऐसा तुम कहते हो, यहाँ क्या तुम्हारा कहना है ? शशिभाई ? कल नहीं थे, नहीं ? सुबह में यह सुबह की बात थी न ? आहाहा !

`व्यवहार' उसका समाधान :- यह प्रश्न जो - ऐसा कहा उसका समाधान, परंतु प्रश्न का रूप - ऐसा है ? प्रश्नकर्त्ता का रूप - ऐसा है, कि मेरी चीज में जो वस्तु है यह वस्तु में है उसको व्यवहार क्यों कहा ? अपने में न हो उसको तो व्यवहार कहो क्योंकि अवस्तु को तो व्यवहार कहा जाता है। परंतु अपनी वस्तु में दर्शन, ज्ञान, चारित्र तो है। विकार नहीं है यह तो दूसरी बात है, परंतु अविकारी गुण और पर्याय तो है, जो है उसको आप व्यवहार कहते हो वह तो अवस्तु हो जाती है, है तो वस्तु अपने में। देवीलालजी ! आहाहा ! - ऐसा प्रश्नकार का रूप है, अब उसका उत्तर है... समझ में आया ?

प्रश्नकार का रूप क्या है कि तुम कह सकते हो, क्योंकि हम अंदर वस्तु अखण्ड आनंद प्रभु है, उसमें ज्ञान, दर्शन, आनंद है - ऐसा हमने भेद करके बताया और उसे व्यवहार कहा तब तुम प्रश्न कर सकते हो, कि उसमें है उसको व्यवहार क्यों

कहते हो ? उसमें न हो उसको व्यवहार कह सकते हो। आहाहा ! उदानी ! यह पढ़ाई दूसरे प्रकार की है। (श्रोता :- यह क्या करने जैसा है कि नहीं करने जैसा) अरे ! यह करने जैसा है, बापू बाकी तो सभी धूल धानी, मरकर जाओगे, चले जाओगे, आहाहा ! कहीं कोई शरण नहीं आहाहा ! शरण तो अंदर आत्मा आनंदस्वरूप यह राग से तो भिन्न है परंतु यह भेद भी उसमें नहीं। अभी प्रश्नकार का प्रश्न आया कि गुण... गुण तो उसमें है, उसमें है, (तब) उसको आप व्यवहार क्यों कहते हो ? अवस्तु जो नहीं है - उसको तो व्यवहार कहा जाता है, उसमें है उसको व्यवहार क्यों कहते हो ? (- ऐसा कहने से) वह तो अवस्तु हो जाती है, यह निश्चय है। प्रश्नकार का रूप, तुम - ऐसा प्रश्न कर सकते हो - ऐसा कहा समझ में आया ?

उसका समाधान :- कि ठीक है, तुम्हारी बात ठीक है। आहाहा ! तुम्हारी बात तो ठीक है। क्या ठीक है ? कि आत्मा वस्तु है उसमें आनंद, ज्ञान आदि दशा है इस अपेक्षा से तुम्हारी बात तो ठीक है परंतु हम किस अपेक्षा से उसे व्यवहार कहते हैं, अब यह सुनो। समझ में आया ? आहाहाहाहा !

यह तो मंत्र है प्रभु के। हैं ? अरेरे ! कभी सुना नहीं परिचय में आया नहीं। अनुभव में तो कहाँ से आए ? आहाहाहा ! - ऐसा प्रश्नकार का रूप पण्डितजी स्वयं से कह कर उत्तर देते हैं। समाधान :- यह ठीक है, तुम्हारी बात अच्छी है क्योंकि अपने आत्मा में दर्शन, ज्ञान, आनंद (तो है) सच्चिदानंद प्रभु के अंदर ज्ञान है, आनंद है, शांति है, यह दशा है और अपने में है, उसको हमने व्यवहार कहा तब तुम कहते हो कि यह तो अवस्तु हो जाती है तब तुम्हारी बात ठीक है भाई, बात तो ठीक है, परंतु हमारा कहने का आशय क्या है ? यह तुम समझो; समझ में आया ?

हमें क्या कहना है, हमारा क्या आशय है ? यह समझों। तुम्हारी बात तो ठीक है कि अपनी पर्याय में है, उसको तुम व्यवहार कहो तो अवस्तु हो जाती है, यह तुम्हारा प्रश्न ठीक है। उदानी ! यह समयसार पढ़ो तो भी समझ में आये - ऐसा नहीं, वहाँ से बैठे बैठे नहीं ? भाई मना करते हैं। ऐसी बात है बापू ! क्या है हाँ ?

यह तो अलौकिक बातें बापू ! आहाहा ! अनंतकाल में अनंत-अनंत भव गये, साधु अनंत बार हुआ, सन्यासी हुआ, स्त्री-कुटुंब को छोड़कर अकेला जंगल में रहा परंतु यह चीज क्या है उसके ज्ञान बिना निष्फल गया सारा। आहाहा ! और उस चीज का ज्ञान कैसे होता है, और किसके आश्रय से होता है। यह क्या चीज है, इसने उसका ख्याल नहीं किया, ज्ञान न किया। तब यहाँ कहते हैं कि ठीक है...।

किन्तु `**यहाँ द्रव्यदृष्टि से अभेद को प्रधान करके उपदेश दिया है।** चिमनभाई

समझ में आता है कि नहीं ?' आहाहा ! वस्तु अंदर है, तब वह चीज है उसमें आनंद आदि श्रद्धा आदि ज्ञानादि दशा भी है गुण भी है, तो भी तुम कहते हो कि उसमें है उसको व्यवहार क्यों कहा ? यह तुम्हारी बात ठीक है। आहाहाहा ! परंतु हमारा आशय क्या है उसमें, यह तुम समझो ! हमारा आशय यह है कि द्रव्यदृष्टि से अभेद को... वस्तु जो अखण्ड अभेद है, यह दृष्टि का विषय बताने को और यह प्रधान अर्थात मुख्य वह है... पर्याय में पर्याय है यह कहीं मुख्य नहीं, उसको तो गौण करके उसमें है नहीं - ऐसा, हमने व्यवहार कहकर अभेद द्रव्य में भेद है नहीं, भेद है यह अवस्तु हुई, तब उसको व्यवहार कहा, तब अभेद में व्यवहार है नहीं यहाँ अभेददृष्टि कराने को, हम भेद को व्यवहार कहते हैं। आहाहा !

अरेरे ! - ऐसा हो यह बापू मार्ग कोई भिन्न है भाई। यह समझे बिना जन्म-मरण मिटेगा नहीं मर जायेगा। यहाँ के बड़े अरबपति कौये और कुत्ते में जानेवाले, कागड़ा समझे, कौआ, कुत्ता आहाहा ! बापू ! ऐसे अनंत भव किये प्रभु क्या कहें ?

अंदर चीज आनंद का नाथ प्रभु एकरूप है। उसमें भेद करना... समझाने के लिये भेद करना कि यह ज्ञान वह आत्मा, दर्शन वह आत्मा। यह भेद करना वह भी व्यवहार हो गया, व्यवहार अर्थात अवस्तु हो गई। अवस्तु अर्थात अभेद में भेद है नहीं। आहाहाहा ! समझ में आया ? द्रव्यदृष्टि से अभेद को एकरूप चीज को, एकरूप चीज को, गुणी वस्तु और उसके गुण - ऐसा भेद न दिखाकर अभेद दिखाना है, और अभेद ऊपर दृष्टि जायेगी तो सम्यग्दर्शन होगा, तभी धर्म प्रगट होगा, भेददृष्टि छोड़कर अभेद अखण्डानंद प्रभु... उसपर दृष्टि करने से, उस दृष्टि को प्रधान करके, उसमें पर्याय है भेद है उसको हमने गौण करके, व्यवहार कह कर अवस्तु कहा। क्योंकि द्रव्यदृष्टि कराने को अभेद दृष्टि की मुख्यता बताने को (कहा) है द्रव्यदृष्टि से अभेद को मुख्य करके उपदेश दिया है।

`अभेददृष्टि में भेद को गौण कहने से'** आहाहा ! (भेद) का अभाव नहीं। परवस्तु का जैसे आत्मा में अभाव है - ऐसा अन्दर ज्ञान दर्शन चारित्र की दशा है उसका आत्मा में अभाव है - ऐसा नहीं है। जैसे परवस्तु का अपने में अभाव है इसीप्रकार अपनी पर्याय का अभाव है - ऐसा है नहीं। समझ में आया ? **`परंतु भेद को अभेद में गौण कहने से अभेद भली भाँति मालूम हो सकता है।' आहाहा ! समझ में आया ?

अभेद चीज की दृष्टि कराने को... इसके बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं, तब अभेद की दृष्टि कराने को भेद को गौण करके व्यवहार कहकर तुम्हारी अपेक्षा से अवस्तु कहने में आया है, है तो वस्तु पर्याय... ***परंतु अभेद की दृष्टि को मुख्य बताने को क्योंकि त्रिकाली की दृष्टि बिना, त्रिकाली द्रव्य की दृष्टि बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं***

यह प्रयोजन है। आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म है।

भाई आये नहीं वह जयंती भाई, भावनगर। उस समय भी नहीं थे रविवार को ? जयंतीलाल, नहीं। (श्रोता :- तबियत बराबर नहीं) तबियत ठीक नहीं। आहाहा ! कहो गुणवंतभाई समझ में आता है यह ? आहाहाहा !

क्या कहते हैं ? सुनो प्रभु, तुम्हारा प्रश्न - ऐसा हो सकता है, क्योंकि वस्तु जो है भगवान आत्मा यह शरीर से तो भिन्न, कर्म से भिन्न, परद्रव्य से भिन्न या अशुद्धता से भी भिन्न, पुण्य-पाप का भाव उससे तो भिन्न... परंतु यहाँ हमको भेद करके बताना है समझने को, परन्तु भेद करके बताया वह भेद है तो व्यवहार... आगे प्रश्न होगा कि जो व्यवहार, भेद करके बताया तब व्यवहार का क्यों उपदेश नहीं देते ? आहाहा ! क्योंकि अभेद चीज जो वस्तु है उसको समझाना किस प्रकार ? वह ज्ञान सो आत्मा, जानना यह आत्मा, विश्वास किस सत्ता में होता है ? जिसकी सत्ता में विश्वास होता है वह आत्मा। जिसकी सत्ता में स्थिरता होती वह आत्मा - ऐसा भेद करके बताना, यह व्यवहार है, क्योंकि इस व्यवहार को गौण करके द्रव्यदृष्टि कराने को, (अभेद) को प्रधान करके (भेद को) व्यवहार कहने में आया है, अवस्तु कहने में आया है। आहाहाहाहा !

शशिभाई ? कल नहीं थे, सुबह नहीं थे ? ठीक आहाहा ! हसुभाई ! समझ में आता है यह ? ऐसी सूक्ष्मबात है यह। क्योंकि `**अभेददृष्टि में भेद को गौण कहने से ही अभेद भली भाँति मालूम हो सकता है**' आहाहाहा ! अखण्ड अभेद दृष्टि कराने को अंतर में गुणभेद पर्यायभेद होने पर भी अभेद दृष्टि कराने को भेद को गौण करने से अभेद भली भाँति मालूम हो सकता है, इस कारण भेद, (पर्याय) उसमें नहीं (है) अभेद की दृष्टि कराने को... आहाहाहा ! समझ में आया ? यह (धर्म) पहले तो सुगम सरल था। **तस्स सुत्तरी करणेणं पायछित्तं करणेणं, इच्छामि पडिक्कमीयुं इरिया, वहियाए, विराहणाए ए** ! लो, समायिक हो गई। इच्छामि पडित्तमीयुं लो ! धूल में नहीं सामायिक, कहाँ ? मिथ्यादर्शन है। आहाहा ! यहाँ तो भेद का विकल्प उत्पन्न होता है और उससे लाभ माने तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! तब भेद से बताया क्यों ? कि देखो भाई ! भेद किये बिना अभेद समझ में आता नहीं। परंतु भेद जो है यह उसकी पर्याय में है, ***परंतु अभेद त्रिकाली (की) दृष्टि कराने को द्रव्यदृष्टि की मुख्यता कराने को, भेद है उसको गौण करके, उसे व्यवहार कहने में आया है व्यवहार कहो कि अवस्तु कहो।*** आहाहाहा !

लो यह लाये बत्ती के लिए लाये सुना था। वास्तव में यह आये। आहाहा ! पिताजी को तो प्रेम था हो। मगनभाई को तो बहुत स्पष्ट नहीं था, परंतु प्रेम था

उन्हें बहुत-प्रेम। आहाहा !

बापू ! यह मार्ग भिन्न जाति का, किस प्रकार की भाषा है यह समझना कठिन है। आहाहा ! प्रभु एकबार सुन, तुम अंदर वस्तु हो न वस्तु, अस्ति मौजूदगी चीज है न ? जैसी यह विद्यमान वस्तु है शरीरादि, उसीप्रकार तुम चैतन्यमूर्ति मौजूदगी अस्तित्ववाली वस्तु हो, वह वस्तु अनंतधर्म और अनंतगुणों का पिण्ड है, और उसमें अनंतगुण होने पर भी और इन गुणों की श्रद्धादि की पर्याय उसमें होने पर भी द्रव्य की दृष्टि की प्रधानता कराने को, अभेद की दृष्टि कराने को, भेद को व्यवहार कहा तब भेद से अभेद ज्ञात होता नहीं, इसकारण भेद को व्यवहार कहकर अभेददृष्टि कराई। आहाहाहा ! कितना यह कहीं कथा कहानी नहीं प्रभु, यह तो भगवत् कथा है, आहाहा ! वस्तु कहो (प्रेमचन्द्रभाई) नये आये परंतु सुनने को अच्छा मिला- ऐसा मार्ग है प्रभु ! क्या करें ? आहाहा ! अरेरे ! दुनियाँ कहाँ कहाँ रूकी वस्तु कहीं रह गई। आहाहा ! और यह वस्तु की दृष्टि और अनुभव किये बिना जन्म-मरण का चक्कर तुम्हारा नाश नहीं होगा। चौराशी के अवतार आहाहा ! यह चौराशी के अवतार को नाश कराने को अभेदवस्तु अनंतगुण की एकरूप वस्तु है उसकी दृष्टि कराने को... मुख्यरूप वह है और उसमें पर्याय है फिर भी उसको गौण करके, व्यवहार करके, अभेद में भेद नहीं। आहाहाहाहा !

कहो समझ में आता है ? इन युवानों को समझ में आता है कि नहीं ? यह सुबोध सुनता है, प्रेम से सुनते है। आहाहा ! अरे ! प्रभु आत्मा है न, नाथ प्रत्येक भगवान है अंदर ! भाई तुम शरीर को न देख ! कर्म को न देख ! राग को न देख ! भेद को नहीं देखो, आहाहा जैसे पर-निमित्त के आश्रय से सम्यक् नहीं होता। इसीप्रकार राग के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता नहीं ऐसे भेद के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहाहा ! इसकारण भेद उसमें होने पर भी उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता, इसकारण से अभेद की दृष्टि कराने को भेद उसमें होने पर भी व्यवहार कहकर अवस्तु कहा है, गौण करके अवस्तु कहा है अभाव करके नहीं। आहाहा ! समझ में आता है कुछ ? ऐसी वस्तु है।

कुछ नये आये है न इसलिये कहा इसलिये यह (लेते है) वैसे तो कलही चला था हाँ ! परसों चला था, आज तीसरी बार चलता है। आहाहा ! तो भी नया-नया आता (है) कहीं वही का वही आता है ? आहाहा ! यहाँ भली भाँति मालूम होता है, इस कारण भेद को गौण करके, इसलिये भेद को गौण करके व्यवहार कहा है तब तुम्हारे हिसाब से तो यह अवस्तु हुई। परंतु गौण करके अवस्तु कहा है, ***त्रिकाली अभेद की दृष्टि कराने को मुख्य करने को कोई चीज है, वहाँ दृष्टि***

होगी तब सम्यग्दर्शन होगा, आहाहा ! भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहा है।

`यहाँ यह अभिप्राय है - अभिप्राय यह है **उसमें भेददृष्टि में भी निर्विकल्पदशा नहीं होती'** आहाहा ! यह हेतु है, जैसे - परद्रव्य के लक्ष्य से अपनी निर्विकल्प अनुभव दशा नहीं होती इसीप्रकार राग के लक्ष्य से अपनी अनुभव दृष्टि सम्यक् नहीं होती। इसी तरह भेद की दृष्टि से अनुभव दृष्टि निर्विकल्प नहीं होती। आहाहा ! यह एक-दो दिन में हो जाये - ऐसा नहीं यह। उस दिन कहा था न वह बत्तीसी बनाने की बजाय दो-पाँच दिन सुने तो ठीक, उस दिन कहा था बराबर है न ? खबर है ! समझने में दिमाग की बहुत कसरत होना चाहिए। आहाहा ! दिमागी कसरत-व्यायाम होना चाहिए। रोटी बनाते है तब आटे को गूंदते है कि नहीं। यों के यों आटा मिलाकर रोटी बनाते है ? आटा में पानी डालकर गूंदते है गूंदे फिर रोटी होती है। इसीप्रकार ज्ञान में इसकी कसरत होना चाहिए क्या भेद ? क्या अभेद ? क्या पर ? क्या स्व ? क्या स्ववस्तु, क्या कहते हैं ? यह समझ में आया ? आहाहा !

भेददृष्टि में भी क्या कहते हैं कि यहाँ यह अभिप्राय है कि भेददृष्टि में भी, `भी' क्यों कहा, भेददृष्टि से भी क्यों कहा ? कि निमित्त के आश्रय से जैसे सम्यग्दर्शन नहीं होता, राग के आश्रय से नहीं होता, ऐसे भेददृष्टि से भी, इसप्रकार `भी' भी वजन से सब, हाँ। नहीं परंतु बराबर भेद चाहिए। देखो यह, क्या कहा है ? कि भगवान आत्मा का सत्यदर्शन, सम्यग्दर्शन कब होता है ? कि कोई पर के लक्ष्य से देव-गुरु-शास्त्र के लक्ष्य से होता नहीं, उसीप्रकार राग के लक्ष्य से नहीं होता, क्यों ? भेददृष्टि से भी होता नहीं `भी' अर्थात उससे भी होता नहीं, उससे भी होता नहीं। आहाहा ! यह तो शब्द मंत्र है यह कोई कहानी नहीं। आहाहा ! गाथा में है उसका स्पष्टीकरण किया है। `व्यवहारेण उपदिश्यते' यह गाथा है न व्यवहारेण उपदिश्यते ज्ञानी दर्शन-ज्ञान-चारित्र। आहाहा ! धर्मी को तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र व्यवहार से है, निश्चय से है नहीं, आहाहा ! उसका अर्थ ? अभेद चिदानंद भगवान की दृष्टि मुख्य कराने को उसमें ज्ञान दर्शन होने पर भी... जैसे परवस्तु का अभाव है - ऐसा उसका (गुण-पर्याय) का अभाव नहीं, परंतु अभेद में भेद करके देखने से... (यदि) भेद ऊपर लक्ष्य जो रहे तब सम्यग्दर्शन नहीं होगा, धर्म नहीं होगा धर्म की शुरूआत नहीं होगी, ***त्रिकाली ज्ञायक भाव अभेद की दृष्टि करने से धर्म की शुरूआत होगी।*** आहाहाहाहा !

राग से तो नहीं परंतु भेद से भी नहीं। ऐसे बात आगे चली अंतिम। अखण्ड जो है उसमें भेद करने से यह ज्ञान है और यह दर्शन है तथा उससे भी सम्यग्दर्शन होता। जैसे राग से तो भिन्न करना है, परंतु भेद से भी भिन्न करके अभेद (की)

दृष्टि करना है। आहाहा ! राग से कहते हैं न पण्डितजी। अलौकिक बात ! (श्रोता :- यह दूसरा पाठ है) यह दूसरा पाठ आया। आहाहा !

भगवान आत्मा शरीर वाणी, मन से तो भिन्न है, जो दया, दान के विकल्प उठते हैं, वह पैसा देते नहीं क्योंकि वह ब्रह्मचारी है तब पैसा खर्चते है ? ऐसी जीवदया में और इसमें तो धर्म होता है ? कहते नहीं, तीनकाल में नहीं। (श्रोता :- राग छोड़ देते हैं) राग छोड़ना यह काम (हो) दूसरा छोड़ना, यह बात यहाँ चलती है, अंदर जो वस्तु है अनंत आनंदकंद प्रभु सच्चिदानंद उसमें ज्ञानादिक की पर्याय का भेद करना, उससे भी अभेद की दृष्टि (अर्थात) सम्यग्दर्शन नहीं होता। राग से तो (नहीं होता) इसलिये `भी' कहा न, **`भेद दृष्टि में भी निर्विकल्प दशा नहीं होती'** आहाहाहा ! जहाँ भेद देखो तब राग होगा। जैसे परद्रव्य को देखने से भगवान को देखने से राग (होता) है। आहाहा ! इसीप्रकार राग का लक्ष्य करने से भी आत्मा प्राप्त नहीं होगा, इसीप्रकार भेद की दृष्टि करने से निर्विकल्प दृष्टि नहीं होगी, निर्विकल्प दृष्टि अर्थात राग से भिन्न अपना चिदानंद, पूर्णानंद प्रभु जिसमें अभेददृष्टि होने से दृष्टि निर्विकल्प होगी। तब सम्यग्दर्शन होगा। तब आत्मा का साक्षात्कार होगा, तब भव का अंत आयेगा। (श्रोता :- यह तो एक दिन में नहीं होगा न) एक दिन में (क्या) एक घड़ी में होगा। परंतु अभ्यास करने से भाई। ऐसे कि एक दिन में है... (क्या) तुम्हारी डॉक्टरी का अभ्यास करने में कितना वर्ष हो गये न ? हाँ वह सभी तो पाप का अभ्यास है, यह डॉक्टर उदानी हमारे बड़े डॉक्टर है वहाँ दाँत के, वहाँ पढ़ने में कुछ साल गये होगे न कहीं बड़ेभाई है न पढ़ाई की है न कुछ नहीं हुआ वह तो बालको को कराते नहीं यह। तब पाप का अभ्यास के लिये पांच-दश साल निकालना। तब इस पढ़ाई के लिये कोइ निश्चित करना कि इतना समय निकालें ? वहाँ मर्यादा कहते हैं कि इतने वर्ष (अभ्यास करना) इससे कम नहीं। जब तक यह एम. ए. एल. एल. बी. पूरी न हो तब तक पढ़ाई करें एल. एल. बी. पूरे हुये बिना वकील नहीं होगा इसप्रकार। यह पूरा किये बिना डॉक्टर नहीं होगा।

इसीप्रकार अभेददृष्टि कराने में थोड़ा समय तो अभ्यास उसको करना चाहिए। छह महीने तो होना ही चाहिए। - ऐसा कलश में आता है न ? जघन्य थोड़ा समय तो अंतर्मुहूर्त है। बहुत तो छहमाह। परंतु उसमें लगनी-लगना चाहिए। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो उसमें क्या लिखा है उसका कैसा अर्थ किया जाता है, अपने आप पढ़ जाये तो कुछ समझ में नहीं आये। आहाहा !

भेददृष्टि में भी... क्या कहना चाहते ? कि अपना द्रव्य वस्तु है उसको छोड़कर

देव-गुरु-शास्त्र का लक्ष्य करने से भी निर्विकल्पता नहीं होती, और राग का लक्ष्य करने से भी निर्विकल्पता नहीं होगी, और ऐसे अभेद की दृष्टि से भी निर्विकल्पता नहीं होगी। आहा ! निर्विकल्पता अर्थात राग से भिन्न होकर, अपनी वीतरागी पर्याय से आत्मा का अनुभव करना उसका नाम निर्विकल्पता है। आहाहाहा ! समझ में आया ? ऐसी चीज है। (श्रोता :- आपका मंत्र बहुत कठिन लगता है)

वहाँ डॉक्टर (बनने में) कितनी पढ़ाई कितना समय लगा होगा ? ऐसे कहीं एक दिन में तो नहीं होनेवाला है। यह तो अनजानी वस्तु है न ! और अभी तो चलती नहीं। संप्रदाय में तो यह बात है ही नहीं, संप्रदाय में तो जहाँ-तहाँ मूर्तिपूजा करो, भक्ति करो, दया पालो, व्रत पालो और उपवास करो, दो-चार उपवास कर लो निर्जला, पानी बिना का, उसमें क्या है ? वह धर्म नहीं। यह तो राग की क्रिया है, तब उससे तो दूर रहो, परंतु अपने में गुण और पर्याय है यह अभेद में भेद करके दिखाना, परंतु वह भेद व्यवहार है, क्योंकि अभेद में भेद नहीं (परन्तु) वह बताये बिना अभेद यथार्थ मालूम होता नहीं। आहाहा ! यह शब्द किस जाति के ? ऐसी बात है। अर्थात लोग बिचारे कहें, एकांत है... एकांत है। सोनगढ़ का एकांत... कहो बापा ! तुम भी प्रभु हो न तुम, तुम्हें अपनी खबर नहीं तुम्हें, आहाहा ! (श्रोता :- इसीका अर्थ होता है ?) इसमें लिखा है, उसका अर्थ होता है। - ऐसा है, उसका अर्थ होता है, (कहीं) अपने मन से करते यह ? पर वह अभ्यास नहीं अभी तो बस प्रवृत्ति प्रवृत्ति। तप और उपवास और - ऐसा करो स्थानकवासी में सामायिक करो, उपवास करो, प्रतिक्रमण करो, श्वेताम्बर में भक्ति, कर्म दहन, सिद्धचक्र बस, सभी पूजा कराओं... दिगम्बर में कपड़ा छोड़ दो, और प्रतिमा ले लो और साधु हो जाओ, परंतु वस्तु (सम्यग्दर्शन) बिना ? (श्रोता :- अच्छारूप बनेगा) क्या अच्छारूप बनेगा, देह छूट जायेगा मर जायेगा और चारगति में जायेगा। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि भेददृष्टि में निर्विकल्प, **भेददृष्टि में भी निर्विकल्पता नहीं होती, सरागी के विकल्प होते रहते है,** यहाँ क्या कहते हैं ? यह भेद को देखने से राग होता है - ऐसा नहीं, क्योंकि भेद को तो केवली भी देखते है, परंतु तुम रागी हो सरागी को कहते हैं, सरागी के विकल्प होते रहते है तुम रागी हो तब भेद देखने से रागी हो इस कारण से राग होता है, भेद को जानने से राग होता है - ऐसा नहीं, तब फिर भेद को तो केवली सभी तीनलोक, तीनलोक देखते है परंतु तुम अल्पज्ञ हो और रागी हो तब राग के कारण तुम भेद पर लक्ष्य करोगे तब तुम्हें विकल्प ही होगा, राग ही होगा और अंतर निर्विकल्प दृष्टि भेद के लक्ष्य से नहीं होगी, जैसे पर के लक्ष्य से निर्विकल्प दृष्टि नहीं होती, इसीप्रकार भेददृष्टि से भी

निर्विकल्प दृष्टि नहीं होती। आहाहा ! और निर्विकल्प दृष्टि हुये बिना आत्मा का अनुभव नहीं होगा। आहाहा ! समझ में आया ?

'सरागी को' जोर यहाँ है। भेद को देखने से राग होता है - ऐसा नहीं भेद को देखने से हो तो केवली तो तीनकाल, तीनलोक को देखते है परंतु (भाई) तुम रागी हो तुम्हारी भूमिका में राग है तब तुम रागी होने से भेद ऊपर दृष्टि करोगे तो राग उत्पन्न होगा। आहाहाहाहा ! अभेददृष्टि करने से तुम्हें वीतरागता होगी। यह धर्म होगा, आहाहाहा ! इतनी शर्त। नरेशजी। ऐसी शरत है। आहाहा ! सरागी को विकल्प होते रहते हैं।

इसलिये जब तक रागादिक दूर न हों... दूर नहीं हो जाते तब तक भेद को गौण करके अभेद निर्विकल्प अनुभव कराया गया है। देखो सारांश आहाहा ! तुम रागी हो और भेद ऊपर लक्ष्य करोगे तो राग होगा। तो जब तक राग का अभाव न हो तब तक अभेद का अनुभव कराया है। आहाहा ! और अभेद की दृष्टि और पूर्ण अभेद हो गया, फिर अभेद को भी जानो और भेद को भी जानो, जानने में तो कोई यह बात है नहीं। परंतु राग जाने के बाद, राग के अभाव के बाद, जबतक राग है तब तक भेद का लक्ष्य करोगे, तब रागी होने के कारण तुम्हें राग होगा। भेद के कारण नहीं।

'वीतराग होने के बाद भेदा-भेदरूप वस्तु का ज्ञाता हो जाता है' फिर वीतरागदशा हुई तब द्रव्य को जानते गुण को जानते पर्याय को जानते, पर को भी जानते है, उससे क्या ? जानना तो उसका स्वभाव है, उससे तो राग होता नहीं। यहाँ नय का अवलम्बन ही नहीं रहता क्या ? ***पूर्ण सर्वज्ञ होने पर राग का अभाव होने से स्व का आश्रय पूर्ण हो गया। अब आश्रय लेना बाकी नहीं तब आश्रय बिना स्व और पर को जानते है।*** आहाहा ! तब ज्ञाता दृष्टा होकर जानते है फिर कहीं अभेद का आश्रय लेना है एवं भेद को गौण करना है यह तो राग जाने के बाद वीतराग होने पर - ऐसा है नहीं वीतराग न हो तबतक उसे राग को गौण करके भेद को गौण करके अभेद की दृष्टि करके पूर्णराग जब नाश न हो तब तक अभेद का अनुभव करना। यही सारांश है लो। (प्रमाण वचन गुरुदेव !)